एक सबक़ इस्लाम से

सफ़वतुल उलमा मौलाना सैय्यद क़ल्बे आबिद साहब क़िब्ला ताबा सराह

सिफाते खुदा और फितरत

अल्लाह तक पहुँचने के लिये बेहतरीन वसीला इन्सान की फितरत और उसका विजदान है फलसफियाना राज़ और उलमा की दलीलें हमारी समझ से बालातर हो सकती हैं मगर फितरत की रहनुमाई हर आलिम व आमी के साथ है किसी चरखा चलाने वाली औरत से खुदा के बारे में पूछा जाता है तो वह हाथ रोक कर कहती है कि यह मामूली सा चरखा जब मैं चलाती हूँ तो चलता है और हाथ रोक देती हूँ तो रुक जाता है तो कारख़ान–ए–आलम बग़ैर किसी चलाने वाले के कैसे चल सकता है। अरब का बद्दू कहता है कि मैं रेगिस्तान में मेंगनियाँ देखकर अन्दाज़ा लगा लेता हूँ कि कोई ऊँट गुज़रा है तो फिर यह सूरज चाँद, ज़मीन और आसमान और हर तरफ इल्म व हिक्मत के आसार क्या किसी लतीफ वजूद का पता नहीं देते।

यही फितरत उन क़बाएल को जो तहज़ीब से ना आशना और दूसरे इन्सानों से अलग–थलग और जंगलों और पहाड़ों तक महदूद थे बता रही थी कि तुम चाहे कुछ न जानते हो किसी नबी या रसूल की आवाज़ तुम तक न पहुँचती हो मगर मैं बताती हूँ कि यह कायनात, यह चाँद सितारे यह ज़मीन व आसमान बग़ैर किसी साहबे इरादा व इख़्तियार के खुद बखुद आलमे वजूद में नहीं आए फितरत ने इन से मुतालबा किया कि वह ऐसी हस्ती के सामने सर झुका दें और उसे अपनी तमन्नाओं का मरकज़ क़रार दें। और इस का मुज़ाहेरा भी उस दौर के फनकारों की बनायी हुई मूर्तियों से होता है जिन्हें उन की नासमझ अक़्ल और कमज़ोर ज़हन ने अपने माबूद की सिफात की निशानी क़रार दिया था। या उन दुआओं मुनाजातों और मदहिया नज़्मों से अन्दाज़ा होता है जिनके ज़रिये से उनके अदबी ज़ौक़ और शएराना ज़हन रखने वाले अफराद अपने जज़्बात का इज़्हार क रते थे।

यह कहना बेजा न होगा कि क़दीम तरीन अदब के जिन शहपारों तक हम पहुँच सके हैं उनका ज़ियादा तअल्लुक़ इसी क़िस्म के मज़हबी अदब से है चाहे मूर्तियों के ज़रिये से जज़्बाते मुहब्बत व अक़ीदत का इज़्हार हो या नज़्म व नस्र में इसका मुज़ाहेरा हुआ हो यह बात साबित हो जाती है कि इन्सानी फितरत जहाँ ख़ालिक़ के वजूद की तरफ रहनुमाई करती है वहीं इसके सिफात इल्म व कुदरत, समीअ व बसीर, रहमानियत व रहमिय्यत और जब्बारियत व क़ह्हारियत की तरफ भी इशारा करती है। मूर्तियों को कभी उसके हुस्न व जमाल का मज़हर क़रार देकर बताया कि वह मरकज़े कमालात है और कभी उनकी शक्ल में रहमानियत और कभी क़ह्हारियत का इज़हार किया। तमन्नओं और दुआओं के ज़रिये बताया कि वह समीअ व बसीर है, इल्म व कुदरत रखता है, मख़लूक़ पर मेहरबान है वरना दुआओं से क्या हासिल है इस बात की वज़ाहत भी ज़रूरी है कि फितरत सिर्फ इशारा करती है उसकी हिदायत इजमाली है इसी लिए फितरत के इशारों को समझने और इजमाल की तफसील में ग़लती हुआ करती है जिसकी मिसाल वह मौलूद बच्चा है जिसे फितरत इशारा कर रही है

कि वह अपनी ग़िज़ा की तलाश में मुँह खोले और उसकी सही ग़िज़ा मादर के पिस्तानों में है मगर वह उन्हें अभी पहचानता नही इसलिए उसके मुँह में काग़ज का कोई टुकड़ा या किसी की उंगली आ जाती है तो वह पिस्ताने मादर के धोखे में उसे चूसने लगता है कभी–कभी परवरिश करने वाले उसके जज़्ब–ए–तलब की तसकीन के लिए उसे चुसनी का आदी बना देते हैं जिससे उसका पेट तो नहीं भरता मगर ग़लत आदत की वजह से वह उसे ढूँढता है और उसके बग़ैर रोता है और बड़े होने पर भी यह आदत नहीं जाती ऐसे में खुदा की माअरफत के सिलसिले में भी फितरत के इजमाल की सही तफसील इन्सान अपने बचपन के दौर में न कर सका जिसे मज़हरे जलाल व जमाल समझा उसके आगे सर झुका लिया बाद में ज़हेन जब पुख़ता हुआ तो अगरचे यह समझने लगा कि जिनकी इबादत कर रहा है सिर्फ खिलौने हैं मगर जो आदत पड़ चुकी होती है उसे छोड़ना बड़ा मुशकिल होता है इसलिए अक़ल रोकती रही मगर आदत सर झुकाती रही।

खुदा पर ईमान के नतीजे

फ़ितरत के इशारे विजदान की आवाज़ और अक़ल की रहनुमाई का तक़ाज़ा है कि इन्सान तसलीम करें कि कारख़ाना–ए–आलम किसी मुख़तसर तरीन जुज़ के समझने से भी अक़्ले इन्सानी क़ासिर है और बड़े–बड़े उलमा हैरान हैं बग़ैर किसी आलिम व क़ादिर के वजूद में नहीं आ सकता मगर इन सबके इजतेमाई फैसले को मान लेना सिर्फ एक हक़ीक़त को तसलीम कर लेना और एक ऐसे वाक़ेए को मान लेना नहीं है जिसका इन्सान की ज़िन्दगी से कोई रब्त व तअल्लुक़ न हो, मान लिया तो अच्छा किया न मानता तब भी कोई नुक़सान न था बल्कि खुदा का इक़रार बराहे रास्त इन्सान की इज्तेमाई और इन्फेरादी ज़िन्दगी पर असर अन्दाज़ होता है।

इस तरह फितरत के हर तक़ाज़े और हर तलब को ठुकराने का नतीजा इन्सान के ज़हन और उसके अअ्साब पर पड़ता है ऐसे खुदा पर ईमान लाना और एक कामिल ज़ात को अपना महबूब क़रार देना अपनी उलझनों को उसके सामने पेश करना फितरत का तक़ाज़ा है इसको ठुकराने के नतीजे में इन्सानी ज़िन्दगी में ऐसा ख़ला पैदा होता है जो किसी चीज़ से पुर नहीं हो सकता हैं वतन परस्ती, क़ौमियत, नेशनलिज़्म, सोशलिज़्म और जाने कितने बुत बनाकर खुदा की जगह बिठाना इस ख़ला को पुर नहीं कर सकता जो अल्लाह के अक़ीदे को हटाने से हुआ है इसके नतीजे में इन्सान का सुकून व इतमिनान जाता रहा। मायूसी के आलम में उसके हाथ पाँव फूल गये और यह मायूसी उस वक़्त पैदा हुई जब उसे मालूम हुआ कि अब मुसीबत से बचाने वाला कोई नहीं है लेकिन अगर ऐसी क़ुव्वत पर यक़ीन हो जिसके क़ब्ज़–ए–इक़्तेदार से कुछ बाहर नहीं तो इन्सान कभी मुकम्मल तौर पर मायूस नहीं हो सकता क्योंकि सब सहारे टूटने के बाद भी एक सहारा है उम्मीद क़ायम रखता है और उम्मीद बाक़ी रहने का मतलब है क़ुव्वते अमल और मुदाफअत का बाक़ी रहना। अगर इन्सान आख़िर वक़्त तक पूरी सलाहियतों के साथ मुक़ाबला करता रहे तो ग़ैबी मदद से नज़र हटाकर भी कामयाबी के इमकानात क़ाएम रहते हैं।

कितना सही इरशाद है क़ुर्आन का : ''फमयंयक्फुर बित्तागूबि व युअ्मिम बिल्लाहि फ़क़दिस्तमसका बिल उरवतिल वुस्क़ा लनफिसाम लहा'' जिसने हर तागूती ताक़त को ठुकरा दिया और अल्लाह पर यक़ीन और ईमान पैदा कर लिया, उसने ऐसे मज़बूत वसीले का सहारा लिया जो हरगिज़–हरगिज़ कभी टूटता नहीं।